बातों से स्पष्ट है कि इनका मानस बिल्कुल अव्यवस्थित है।''

आर्द्रक-''महानुभाव! आपका यह कथन केवल ईर्ष्याजन्य है। वस्तुतः आपने भगवान के जीवन का रहस्य ही नहीं समझा। इसीलिए तो आपको उनके जीवन में विरोध दिखाई देता है। यह न समझने का ही परिणाम है। पहले एकान्तविहारी और अब साधु-मण्डल के बीच उपदेश करना, इसमें विरोध की बात ही क्या है? जब तक वे छद्मस्थ थे तब तक एकान्तविहारी ही नहीं, प्रायः मौनी भी थे, और यह वर्त्तन तपस्वी जीवन के अनुरूप भी था। अब वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं, उनके राग-द्वेष के बन्धन समूल नष्ट हो चुके हैं, अब उनके हृदय में आत्म साधना के साथ-साथ जगत् के कल्याण की भावना भी है। प्राणी मात्र के कल्याण का आकांक्षी पुरुष हजारों के बीच में बैठकर उपदेश करता हुआ भी एकान्तसेवी है। वीतराग के लिए एकान्त और लोकाकुल प्रदेश में कुछ भी भेद नहीं? निर्लेप आत्मा को सभा या समूह लिप्त नहीं कर सकते और धर्मोपदेश प्रवृत्ति तो महापुरुषों का आवश्यक कर्त्तव्य है। जो क्षमाशील तथा जितेन्द्रिय है, जिसका मन समाधि में है, वह दोषरहित भाषा में धर्मदेशना करे, उसमें कुछ भी दोष नहीं। जो पांच महाव्रतों का उपदेश करता है, जो पांच अणुव्रतों की उपयोगिता समझाता है, जो पांच आस्रव, पांच संवर को हेय, उपादेय बतलाता है और जो अकर्त्तव्य कर्म से निवृत्त होने का उपदेश करता है वही बुद्धिमान है, वही कर्मयुक्त होने वाला सच्चा श्रमण है।''

गोशालक- ''यदि ऐसा है तो सचित्त जल के पान, सचित्त बीज तथा आधाकर्मिक आहार के भोजन और स्त्रीसंग में दोष नहीं हो सकता। हमारे धर्म में तो यही कहा है कि एकान्तविहारी तपस्वी के पास पाप फटकता तक नहीं।''

आर्द्रक- सचित्त जल के पान, बीज तथा आधाकर्मिक आहार के भोजन और स्त्रीसंग आदि को जो जानबूझकर करता है, वह साधु नहीं हो सकता। सचित्त जलपायी, बीजभोजी और स्त्रीसेवी भी यदि श्रमण कहलाएंगे, तब गृहस्थ किसे कहा जाएगा? गोशालक! सचित्त जलपायी और सजीव बीजभोजी उदरार्थी भिक्षुओं की भिक्षावृत्ति अनुचित है। ज्ञातिसंग को न छोड़ने वाले वे रंक भिक्षु कभी मुक्त नहीं होंगे।''

गोशालक- अरे आर्द्रक! इस कथन से तो तू सभी अन्यतीर्थिकों की निन्दा कर रहा है और बीज फलभोजी तपस्वी महात्माओं को कुयोगी और उदरार्थी भिक्षु कहता है?''

आर्द्रक- मैं किसी की निन्दा नहीं करता किन्तु अपने दर्शन (मत) का वर्णन करता हूं। सब दर्शन वाले अपने मतों का प्रतिपादन करते हैं और प्रसंग आने पर एक दूसरे की निन्दा भी करते हैं। मैं तो केवल अपने मत का प्रतिपादन और पाखण्ड का खण्डन करता हूं। जो सत्य धर्म है उसका खण्डन कभी नहीं होता और जो पाखण्ड है उसका खण्डन करना बुरा नहीं। फिर भी मैं किसी को लक्ष्य करके नहीं कह रहा हूं।''

गोशालक-''आर्द्रक! तुम्हारे धर्माचार्य की भीरुता-विषयक एक दूसरी बात कहता हूं, इसे भी सुन। पहले ये मुसाफिरखानों और उद्यानघरों में ठहरते थे पर अब वैसा नहीं करते। ये जानते हैं कि उन स्थानों में अनेक बुद्धिमान चतुर भिक्षु एकत्र होते हैं। कहीं ऐसा न हो कि कोई शिक्षित भिक्षु कुछ प्रश्न पूछ बैठे और उसका उत्तर न दिया जा सके। इस भय से इन्होंने उक्त स्थानों में आना आजकल छोड़ दिया है।''

आर्द्रक-''मेरे धर्माचार्य के प्रभाव से तुम बिल्कुल अनभिज्ञ मालूम होते हो। महावीर सचमुच महावीर हैं। इनमें न बाल चापल्य है और न काम-चापल्य। ये सम्पूर्ण और स्वतन्त्र पुरुष हैं। जहां

राजाज्ञा की भी परवाह नहीं, वहां भिक्षुओं से डरने की बात करना केवल हास्यजनक है। मंखलि श्रमण! महावीर आज मुसाफिरखानों में रहने वाले साधारण भिक्षु नहीं, वे जगदोद्धारक धर्म तीर्थंकर हैं। एकान्तवास में रहकर इन्होंने पहले बहुत तपस्याएं की हैं और घोर तपस्याओं द्वारा पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करके अब ये लोक-कल्याण की भावना से ऐसे स्थानों में विचरते हैं, जहां परोपकार का होना सम्भव हो। इसमें किसी के भय अथवा आग्रह को कुछ स्थान नहीं। कहां जाना और कहां नहीं, किससे बोलना और किससे नहीं तथा किससे प्रश्नोत्तर करना और किससे नहीं- ये सब बातें इनकी इच्छा पर ही निर्भर रहती हैं। मुसाफिरखानों में ये नहीं जाते, इसका भी कारण है। वहां बहुधा अनार्य स्वभाव के मताग्रही लोग मिलते हैं, जिनमें तत्त्वजिज्ञासा का नितान्त अभाव और कदाग्रह तथा उद्दण्डता आदि की प्रचुरता होती है।''

गोशालक-''तब तो श्रमण ज्ञातपुत्र अपने स्वार्थ के लिए ही प्रवृत्ति करने वाले लाभार्थी वणिक् के समान हुए न?''

आर्द्रक-''भगवान को सर्वांश में लाभार्थी वणिक् की उपमा नहीं दी जा सकती। लाभार्थी वणिक् प्राणियों की हिंसा करते हैं, परिग्रह पर ममता करते हैं, ज्ञातिसंग को न छोड़कर स्वार्थवश नए-नए प्रपंच रचते हैं। धन के लोभी और विषयभोगों में आसक्त वे आजीविकार्थ इधर-उधर मारे मारे फिरते हैं, ऐसे कामी और विषयगृद्ध वणिकों की उपमा भगवान महावीर को नहीं दी जा सकती। आरम्भ परिग्रह मग्न वणिकों की प्रवृत्ति को तुम लाभकारी प्रवृत्ति कहते हो, यह भूल है। वह प्रवृत्ति उनके लाभ के लिए नहीं, अपितु दुःख के लिए है। जिस प्रवृत्ति का संसार-भ्रमण ही फल है उसको लाभदायक कैसे कह सकते हैं?''

इसके बाद आर्द्रक मुनि को शाक्यपुत्रीय भिक्षु मिले। उनके साथ भी अनेक तर्क-वितर्क करके अपनी युक्तियों से उन्हें निरुत्तर किया। फिर ब्राह्मण सांख्य मतानुयायी संन्यासी, एकदण्डी हस्तितापसादों आदि के साथ आर्द्रक मुनि की चर्चा हुई। इसका विस्तृत वर्णन सूत्रकृतांगसूत्र में उपलब्ध है।''

हस्तितापसों को निरुत्तर कर स्व-प्रतिबोधित ५०० चोरों तथा प्रतिबोध पाए हुए हस्तितापसादि वादी और इतर परिवार के साथ आर्द्रक मुनि आगे बढ़ रहे थे कि एक वन हाथी, जो नया ही पकड़ा हुआ था, बन्धन तोड़कर उनकी तरफ झपटा। उसे देखकर लोगों ने बड़ा हो हल्ला मचाया कि हाथी मुनि को मारे डालता है। पर, आश्चर्य के साथ उन्होंने देखा कि विनीत शिष्य की तरह हाथी मुनि के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम कर रहा है और क्षणभर के बाद वह वन की ओर भाग रहा है।

उक्त घटना सुनकर राजा श्रेणिक आर्द्रककुमार मुनि के पास आए और हाथी के बन्धन तोड़ने का कारण पूछा। उत्तर में मुनि ने कहा- ''राजन्! मनुष्यकृत पाश तोड़कर मत्त हाथी का वन में जाना ऐसा दुष्कर नहीं जैसा कच्चे सूत का धागा तोड़ना।''

राजा श्रेणिक ने जब आर्द्रक के मुख से यह बात सुनी तो उन्होंने पूछा-''आर्य! हाथी पकड़ने के साथ कच्चे धागों का क्या संबंध है? तुम्हारी बात हमें समझ नहीं आई।''

आर्द्रक ने उत्तर दिया- ''राजन्! मैं घर से चला। वसन्तपुर के बाहर मन्दिर में साधु-वेश में ध्यान मुद्रा में खड़ा था। संध्या का झुरमुट अंधकार व्याप्त हो रहा था। धनश्री अपनी सखियों के साथ यहां खेलने को आई। धनश्री खेल खेल रही थी कि अंधकार में उसने खम्भे की जगह मुझे खम्भा समझकर पकड़ते हुए कहा-''देखो! यह मेरा पति है।'' इच्छा न होते हुए भी भावी की दुर्बलता ने मुझे विवाह के

बंधन में धकेल दिया।

राजन्! जब भोगावली कर्म उदय में आता है तो उसे भोगना ही पड़ता है। इस कर्म के वश मैं संसार के दलदल में फंस चुका था। मेरी पत्नी के पुत्र हुआ।

पुत्र पांच वर्ष का हुआ तो मेरे मन में पुनःदीक्षा के विचार जागृत हुए। मैं पलंग पर आराम कर रहा था। मेरी पूर्व पत्नी चरखा कात रही थी। चंचल बेटे ने आकर पूछा-''मां! क्या कर रही हो?''

मां ने पुत्र से कहा-''बेटे! सूत कात रही हूं। तुम्हारे पिता साधु बनने वाले हैं। अब हमें सूत कातकर ही गुजारा करना है।''

यह सुनते ही बालक ने कच्चे सूत से मेरी दोनों टांगों पर १२ बंधन लगा दिए और बोला- मैंने पिता जी को बांध दिया है। यह कहीं नहीं जाएंगे।'' मैंने देखा, बच्चे ने १२ बंधनों से मुझे बांधा था। मैंने पुत्र की अवस्था देखी और मैंने पुत्र-स्नेह के कारण १२ वर्ष पुनः गृहस्थ में रहने का निर्णय किया। इसलिए मैंने कहा-''लोह श्रृंखलाओं को तोड़ना सरल है पर कच्चे सूत के धागे तोड़ना कठिन है।'' उसके बाद आर्द्रक मुनि प्रभु महावीर के पास गए। विधि सहित वन्दन किया। साथ में ऐसे ५०० सिपाही जो चोर बन चुके थे उन्हें प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षित करवाया। उनके साथ प्रतिबोधित तापस भी दीक्षित हुए।

बीसवां वर्ष

इस वर्ष का वर्षावास भी प्रभु महावीर ने राजगृही नगरी में किया। वर्षावास के समाप्त होते ही प्रभु महावीर राजगृही से कोशाम्बी पहुंचे। राजगृही और कोशाम्बी के बीच काशी राष्ट्र पड़ता था। इस देश की प्रसिद्ध नगरी थी आलंभिया। प्रभु महावीर जन-कल्याणार्थ यहां पधारे। धर्मदेशना हुई। प्रभु महावीर के उपदेशों की चर्चा घर-घर होने लगी।

ऋषिभद्र श्रमणोपासक

यह नगर श्रमण भगवान महावीर के श्रावकों से भरा पड़ा था। यहां के श्रावक तत्त्वज्ञान से भरपूर थे। यहां ऋषिभद्र नामक धनाढ्य श्रमणोपासक रहता था। उसकी मित्रमंडली के सदस्य भी श्रमणोपासक थे।

एक समय उसने मित्र-मंडली से कहा- देवलोक में देवों की आयु कम से कम १० हजार वर्ष और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम है।'' ऋषिभद्र श्रमणोपासक की यह बात उनकी मंडली के सदस्यों को पसंद नहीं आई। उचित समाधान न पाकर शंकित हृदय से वह घर को चले गए थे। प्रभु महावीर धर्मदेशना देते देते इस नगर के शंखवन उद्यान में आए। धर्मसभा में व अन्य मित्र-मंडली के श्रमणोपासकों ने ऋषिभद्र द्वारा किए गए कथन की सत्यता के बारे में पूछा।

प्रभु महावीर ने कहा-''ऋषिभद्र का कथन यथार्थ है। देवों की आयु इतनी ही है।''

श्रमणोपासक वापस आए। ऋषिभद्र को नमस्कार किया, फिर क्षमा याचना की।

ऋषिभद्र भी एक बार प्रभु महावीर के साथ लम्बी धर्मचर्चाएं करता रहा। लम्बे समय तक श्रावक के व्रतों का आचरण करते हुए मासिक अनशनपूर्वक आयुष्य पूरा किया। मरकर वह सौधर्म देवलोक में देवता बना।''

मृगावती की प्रव्रज्या

आलंभिया से विहार कर प्रभु महावीर कौशाम्बी पधारे। उस समय रानी मृगावती के पुत्र उदायन

की आयु छोटी थी। महारानी मृगावती के रूप-लावण्य से प्रभावित होकर राजा चण्डप्रद्योत ने उसकी नगरी को बाहर से घेर लिया था। रानी ने नगर-द्वार बंद करवा दिए थे।

रानी मृगावती ने चण्डप्रद्योत को बातों में उलझाकर रखा। वह स्वयं अपने राज्य का संचालन करने लगी। भगवान महावीर का पधारना उसके लिए वरदान सिद्ध हुआ। उसे पता था कि चण्डप्रद्योत भी प्रभु महावीर का परम भक्त है, इसलिए वह प्रभु महावीर को वन्दन करने जरूर आएगा।

भगवान महावीर के पधारने की सूचना पाकर राजा चण्डप्रद्योत अपनी रानियों अंगारवती सहित तथा उदायन राजमाता मृगावती सहित प्रभु महावीर के समवसरण में आए। भगवान महावीर के वैराग्ययुक्त प्रवचन से अनेक लोगों के मन में वैराग्य जगा और उन्होंने अणुव्रत व महाव्रत अंगीकार किए।

राजमाता मृगावती ने कहा-''भगवन्! मैं राजा चण्डप्रद्योत की आज्ञा से पुत्र को राज्य संभालकर दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूं।''

प्रभु महावीर ने कहा- ''देवानुप्रिय! जैसी तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो। पर शुभ काम में प्रमाद मत करो।''

राजा चण्डप्रद्योत की इच्छा मन में मृगावती को दीक्षा की आज्ञा देने की नहीं थी, पर समवसरण के प्रभाव के कारण वह इंकार न कर सका। उसने मृगावती को आज्ञा प्रदान की। मृगावती ने अपने पुत्र उदायन को चण्डप्रद्योत के संरक्षण में छोड़ दिया। अब वह मृगावती चिंतामुक्त हो गई। चण्डप्रद्योत की आठ रानियों ने भी दीक्षा स्वीकार की और मोक्ष मार्ग की साधना प्रारम्भ की। इस प्रकार मृगावती ने साध्वी बनकर स्वयं का ही कल्याण नहीं किया बल्कि समस्त राष्ट्र का कल्याण किया। नगर पर आया संकट टल गया।

कुछ समय तक प्रभु महावीर आसपास के क्षेत्रों में धर्म-प्रचार करते रहे। वर्षावास का समय नजदीक था। प्रभु महावीर ने विदेह देश की ओर प्रस्थान किया।

भगवान महावीर का यह वर्षावास वैशाली नगरी में सम्पन्न हुआ। विदेह देश में प्रभु महावीर के इस वर्षावास का जनता को पूरा लाभ मिला।

प्रभु महावीर ने वर्षावास सम्पन्न करते ही मिथिला नगरी की ओर प्रस्थान किया।

सुनक्षत्र मुनि की दीक्षा

मिथिला से प्रभु महावीर काकंदी नगरी पधारे। वहां के निवासी सुनक्षत्र ने प्रभु महावीर का उपदेश सुना। उसके मन में वैराग्य जागा। उसने प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षा अंगीकार की। ग्यारह आगमों का अध्ययन किया।"मरकर अंतिम समय वह सर्वार्थसिद्ध विमान में देव बना।"[3]

जैनधर्म के इतिहास में मिथिला का अपना स्थान है। प्रभु महावीर मिथिला होते हुए काकंदी नगरी पधारे। काकंदी का सुन्दर वर्णन शास्त्र में प्राप्त होता है। वहां का राजा जितशत्रु था जो प्रजा में बहुत प्रिय था। वास्तव में वह गुणसम्पन्न विद्वान राजा था।

वहां सार्थवाही भद्रा रहती थी, जो बड़ी व्यवहार-कुशल महिला थी। उसके पास धन-सम्पदा का अथाह अंबार था। भद्रा के एक पुत्र था धन्यकुमार, जिसका पालन-पोषण उसने राजकुमारों की तरह किया था। वह भद्रा की साधना का प्रतीक था। भद्रा एक आदर्श मां भी थी। वह अपने कर्त्तव्य को अच्छी

तरह जानती थी। उसे अपने घर सुन्दर बहू लाने का शौक था। इसी कारण उसने एक साथ बत्तीस-बत्तीस पुत्र-वधुओं का मुंह देखा। ये कन्याएं सम्पन्न व सुशील घरों की सुपुत्रियां थीं। धन्य व उसकी पत्नियां मां भद्रा से अथाह प्यार करते थे। यही कारण था कि अब वह सब नागरिकों की भी ''माता'' बन गई थी। इसका कारण भद्रा द्वारा सभी का सम्मान व जरूरतमंदों की सहायता करना था।

एक बार प्रभु महावीर इस नगरी में सहस्रवन उद्यान में पधारे। प्रभु का समवसरण लगा। राजा जितशत्रु व उसकी प्रजा प्रभु महावीर का उपदेश श्रवण करने गई। धन्यकुमार भी वहां पहुंचा। उपदेश सुना तो वैराग्य हो गया। संसार के भोग विलास फीके-फीके नजर आने लगे। विराट् वैभव, पत्नियों के भोग विलास व मां की ममता,कोई भी उसे इस त्याग मार्ग पर बढ़ने से न रोक सके।

धन्यकुमार साधु बन गया। साधु बनते ही उसने बेला-बेला व्रत की तपस्या शुरू की। पारणा भी वह नीरस आहार से करता। जिस भोजन को कोई फकीर लेना पसंद नहीं करता था, ऐसा भोजन करके वह व्रत खोलता। इसी कारण उन्हें उचित भोजन न मिल पाता। कभी भोजन मिलता तो पानी न मिल पाता, पानी मिलता तो भोजन नहीं मिल पाता, पर धन्य अनगार अपनी साधना के प्रति सतत जाग्रत रहता। उनकी शरीर के प्रति आसक्ति समाप्त हो गई थी। जैसे सांप बिना रगड़ के बिल में जाता है वैसे ही धन्य अनगार स्वादरहित भोजन खाते थे। उन्होंने इस तरह से स्वाद-विजय प्राप्त कर ली थी। उनकी साधना में फूल और शूल की भेद-रेखा समाप्त हो चुकी थी।

उग्र तप-साधना से धन्य अणगार का शरीर सूखकर काला पड़ गया। नसें बाहर दिखाई देने लगीं। रक्त, मज्जा, मांस का शरीर पर नाम मात्र ही था। उनकी शारीरिक हालत बहुत कमजोर हो चुकी थी। जब भी वह उठते, बैठते, चलते फिरते तो हड्डियां कड़कड़ाहट की आवाज करतीं। वह भले ही शरीर से दिखाई नहीं देते थे पर उनकी आत्मा कर्मनिर्जरा के कारण उच्च स्थिति में थी। उनका मनोबल उच्च था। चाहे शरीर का बल क्षीण हो गया था, बोलने में कठिनता थी। उनका जीवन साधकों के लिए प्रकाश-स्तम्भ था।

महान तपस्वी

एक बार राजा श्रेणिक ने प्रभु महावीर से प्रश्न किया-''प्रभु! आपके १४ हजार शिष्यों में सबसे उच्च तपस्वी कौन है? कौन दुष्कर क्रिया और महानिर्जरा करने वाला है?''

प्रभु महावीर ने उत्तर दिया-''श्रेणिक! साधकों में सबसे श्रेष्ठ तपस्वी धन्य अनगार है जो महादुष्कर क्रिया करने वाला और महानिर्जरा करने वाला है।''

इस तरह प्रभु महावीर ने प्रशंसा की। राजा श्रेणिक भी धन्य अणगार के दर्शन करने हेतु आया। उसने प्रभु महावीर की प्रशंसा भी अणगार धन्य से कही। वह इस प्रशंसा से अधिक प्रसन्न नहीं हुए क्योंकि साधक का परम लक्षण दुःख-सुख में सम रहना है। प्रशंसा और निंदा, मान-अपमान से परे वह स्थितप्रज्ञ अवस्था में लीन थे। आत्म चिंतन में लगे थे। उनका तप कर्मनिर्जरा के लिए था, न कि संसार में प्रसिद्धि के लिए।

मगध सम्राट उनके दर्शन से प्रसन्न हुआ। एक महीने का संयम पालन कर मारणान्तिक संलेखना कर धन्य अणगार सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप में पैदा हुए।"

श्रमणोपासक कुण्डकोलिक

काकंदी से विहार करके प्रभु महावीर काम्पिल्यपुर पधारे। वहां समवसरण लगा। राजा जितशत्रु व उसकी प्रजा धर्मोपदेश सुनने आई और वन्दन करने के पश्चात् चली गई। इसी नगर का करोड़पति कुण्डकोलिक भी धर्म उपदेश सुन रहा था। प्रभु महावीर के वैराग्यमय उपदेश का उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप उसने श्रावक के व्रत प्रभु महावीर से अंगीकार किए।

इस श्रेष्ठी की सम्पदा का वर्णन उपासकदशांगसूत्र में मिलता है। उसके पास १४ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं थीं। दस-दस हजार गाओं के छह व्रज थे। इन गाओं के चारे के लिए उपयुक्त भूमि भी थी।

देव आगमन व चर्चा

वह साधना करने लगा। सामायिक व पौषध द्वारा अपनी आत्मा को निर्मल बनाने लगा। एक बार मध्याह्न के समय वह अपनी अशोक वाटिका में आया। वहां पृथ्वी शिला पट्टक पर अपनी नाम की मुद्रिका और उत्तरीय वस्त्र रखकर धर्म-आराधना करने लगा। उसी समय एक देव वहां प्रकट हुआ और उसने प्रकट रूप में कुण्डकोलिक से कहा-''मंखलीपुत्र गोशालक की धर्म प्रज्ञप्ति अत्यंत सुन्दर है। उसमें उत्थान, बल, वीर्य और पुरुषाकार का अभाव है। सभी बातें नियति पर अवलम्बित हैं अतः उसे तुम ग्रहण करो तो अच्छा है।''

कुण्डकोलिक- ''देवराज! आपका कथन युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि आपको ये दिव्य ऋद्धि, द्युति आदि की जो प्राप्ति हुई है वह पुरुषार्थ या पराक्रम से मिला है या पुरुषार्थ के अभाव में?''

देव- ''ये सभी मुझे पुरुषार्थ के बिना ही प्राप्त हुआ है।''

कुण्डकोलिक- ''आपने सारी बातें पुरुषार्थ के अभाव से मानी हैं तो जिनमें उत्थान, पराक्रम का अभाव है, वह देव क्यों नहीं बने? तुम्हारा गोशालक की धर्म-प्रज्ञप्ति के संबंध में तर्क वजनदार नहीं है। मैं तुम्हारे कथन से सहमत नहीं हूं।''

कुण्डकोलिक के उत्तर सुनकर देव निरुत्तर हो गया। देव जहां से आया था वहां चला गया।

सुबह हुई। कुण्डकोलिक प्रभु महावीर के दर्शन करने के लिए आया। समवसरण लगा हुआ था। सर्वज्ञ महावीर ने धर्म उपदेश के बाद कुण्डकोलिक से पूछा-''देवानुप्रिय! क्या धर्म- आराधना करते समय कोई देव ने आकर तुमसे मंखलिपुत्र गोशालक की धर्म-प्रज्ञप्ति की प्रशंसा की थी?''

कुण्डकोलिक- ''हां प्रभु! आपका कथन सत्य है।''

फिर सर्वज्ञदर्शी प्रभु महावीर ने सारे घटनाक्रम पर प्रकाश डाला। कुण्डकोलिक व देव के मध्य हुई बातचीत का वर्णन किया।

प्रभु महावीर ने अपने साधु-साध्वियों को संबोधित करते हुए कहा- ''हे आर्यो! जो गृहस्थाश्रम में रहकर भी अर्थ हेतु प्रश्न, व्याकरण और उत्तर के संबंध में अन्य तीर्थिकों को निरुत्तर करता है। तो हे आर्यो! द्वादश गणिपिटक का अध्ययनकर्त्ता श्रमण निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर करने में समर्थ है।''

इस प्रकार प्रभु महावीर ने कुण्डकोलिक के ज्ञान व साधना की प्रशंसा अपनी धर्मसभा में की। इस बात से यह बात सिद्ध होती है कि भगवान महावीर के श्रावक घर में रहते हुए भी तत्त्वज्ञान में किसी को भी पराजित करने में सक्षम थे।

दूसरा तथ्य यह है कि प्रभु महावीर ज्ञान की प्रशंसा करने में नहीं चूकते थे। ज्ञानी के ज्ञान की

प्रशंसा वह अपने साधु-साध्वी परिवार में उन्हें (साधु-साध्वी) को शिक्षित करने के लिए करते थे। वह श्रावक व श्राविका को भी धर्म संघ का बराबरी का स्थान बिना जाति-पाति, देश, काल, रंग, नस्ल, भाषा, आयु व लिंग के आधार पर देते थे। प्रभु महावीर ज्ञानी के ज्ञान के प्रबल प्रशंसक थे। दूसरों को उनसे प्रेरणा लेने की बात कहते थे।

कुण्डकोलिक ने लम्बे समय तक धर्म-आराधना की। फिर द्वादश श्रावक प्रतिमाओं की आराधना कर देवलोक में उत्पन्न हुआ।

सद्दालपुत्र का व्रत ग्रहण

कांपिलपुत्र से विहार कर भगवान महावीर पोलासपुर पधारे। पोलासपुर में आजीवक (गोशालक) मत का श्रावक सद्दालपुत्र रहता था। वह गोशालक का परम भक्त था। उसके द्वारा बताए गए मार्ग पर चलता था। वह जाति का कुम्भकार था पर सम्पन्न कुम्भकार था। उसकी नगर में ५०० दुकानें थीं जिसमें विभिन्न प्रकार के बर्तन व खिलौने तैयार होते थे। उसके यहां अनेक कर्मचारी उन बर्तनों को तैयार करते थे। फिर तैयार बर्तनों को दूसरे कर्मचारी बाजार-चौराहों में बेचते थे। उसके पास तीन करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं थीं और दस हजार गायों का एक व्रज था। उसकी पत्नी सुन्दर, सुशील व धार्मिक प्रवृत्ति की थी। उसका नाम अग्निमित्रा था। वह भी आजीवकोपासिका थी।

देव प्रकट होना

एक बार सद्दालपुत्र मध्याह्न में अपनी वाटिका में बैठा गोशालक द्वारा बताए मार्ग के अनुसार धर्म-आराधना कर रहा था कि तभी एक देव प्रकट हुआ। देव ने कहा- ''सद्दालपुत्र! कल प्रातः सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, महाब्राह्मण पधारेंगे। उनके पास जाकर प्रतिहारक, शय्या, पीठ फलकादि के लिए उन्हें निमन्त्रित करना।''

यह बात सुनते ही वह सावधान हो गया, उसने सोचा कि मेरे धर्माचार्य गोशालक ही कल पधारेंगे। क्योंकि वर्तमान में वही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, जिनकी देव ने प्रशंसा की है।

अगले दिन सुबह शीघ्रता से उठा। सभी शारीरिक जरूरतों से निवृत्त हो वह अपने धर्माचार्य के पास जाने की तैयारी करने लगा। अभी वह ठीक तरह से तैयार भी नहीं हुआ था कि इतने में जन-प्रवाद सुनाई देने लगा- पोलासपुर के बाहर ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं।

महावीर का आगमन सुनते ही सद्दालपुत्र हतोत्साह हो गया। उसकी दर्शनोत्कंठा शान्त हो गई। क्षणभर के लिए किंकर्त्तव्यविमूढ़ होने के उपरान्त उसे गत रात्रि का देवादेश याद आया। उसका हृदय जागृत हुआ। वह भगवान के पास पहुंचा और विनयपूर्वक बोला- ''भगवन्! शय्या, फलकादि प्रस्तुत हैं, स्वीकार करने का अनुग्रह कीजिए।'' श्रमण भगवान सद्दालपुत्र का निमंत्रण स्वीकार कर उसकी भाण्डशाला में जा उपस्थित हुए।

भगवान महावीर को अपनी भाण्डशाला में ठहराकर तथा पीठ फलकादि प्रातिहारिक अर्पण कर सद्दालपुत्र अपने काम में लगा। भाण्डशाला में बर्तनों को इधर-उधर करता, गीलों को धूप में और सूखों को छाया में रखता हुआ वह अपने काम में लीन था, उस समय भगवान ने सद्दालपुत्र से पूछा- ''सद्दालपुत्र! यह बर्तन कैसे बना?''

सद्दालपुत्र- ''भगवन्! यह बर्तन पहले केवल मिट्टी ही होता है। उसे जल में भिगो लीद-भूसा आदि

मिलाकर पिण्ड बनाते हैं और पिण्ड को चाक पर चढ़ाकर हांडी, मटकी, आदि अनेक प्रकार के बर्तन बनाए जाते हैं।''

महावीर- ''ये बर्तन पुरूषार्थ और पराक्रम से बने हैं अथवा उनके बिना ही?''

सद्दालपुत्र- ये बर्तन नियति-बल से बनते हैं, पुरूष पराक्रम से नहीं। सब पदार्थ नियतिवश हैं। जिसका जैसे होना नियत है, वह वैसे ही होता है। उसमें पुरूष प्रयत्न कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता।''

महावीर- ''सद्दालपुत्र! तुम्हारे इन कच्चे तथा पक्के बर्तनों को यदि कोई पुरूष चुरा ले, बिखेर दे, फोड़ डाले या फेंक दे अथवा तेरी स्त्री अग्निमित्रा से अभद्र व्यवहार करे तो तुम उसे क्या दण्ड दोगे?''

सद्दालपुत्र- ''भगवन्! उस पुरूष को मैं गालियां दूंगा, पीटूं, बांधूं तर्जन-ताड़न करूंगा और उसके प्राण तक ले लूंगा।''

महावीर- ''सद्दालपुत्र! तुम्हारे मत से न कोई पुरूष तुम्हारे बर्तन तोड़ -फोड़ या चुरा सकता है,न ही तुम्हारी स्त्री के पास जा सकता है और न ही तुम उसे तर्जन-ताड़नादि दण्ड ही दे सकते हो, क्योंकि सब भाव नियत ही होते हैं। किसी का किया कुछ नहीं होता। यदि तुम्हारे बर्तन किसी से तोड़े-फोड़े जा सकते हैं, अग्निमित्रा के पास कोई जा सकता है और इन कामों के लिए तुम किसी को दण्ड दे सकते हो तो फिर पुरूषार्थ नहीं, पराक्रम नहीं, सर्वभाव नियत है।' यह तुम्हारा कथन असत्य सिद्ध होगा।''

सद्दालपुत्र समझ गया। नियतिवाद का सिद्धान्त कैसा अव्यावहारिक है, इसका उसे पता लग गया। वह श्रमण भगवान महावीर के चरणों में नतमस्तक होकर बोला- ''भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश सुनना चाहता हूं।''

भगवान महावीर ने सद्दालपुत्र की इच्छा का अनुमोदन करते हुए निर्ग्रन्थ-प्रवचन का उपदेश दिया,जिसे सुनकर सद्दालपुत्र को जिन-धर्म पर श्रद्धा और रूचि जाग्रत हुई। उसी समय उसने द्वादश व्रत स्वीकार किए।

घर जाकर सद्दालपुत्र ने अपने नए धर्म और नए धर्माचार्य के स्वीकार की बात धर्मपत्नी अग्निमित्रा से कही और उसे भी एक बार भगवान महावीर के मुख से निर्ग्रन्थ-प्रवचन सुनने और उस पर श्रद्धा लाने की सलाह दी। पत्नी अग्निमित्रा अपना रथ सजाकर भगवान के पास गई और उनका दिव्य उपदेश सुनकर उसके हृदय में यथार्थ श्रद्धा उत्पन्न हुई और उसी समय सम्यक्त्व मूल द्वादश व्रतात्मक गृहस्थ धर्म स्वीकार कर अपने स्थान गई।

सद्दालपुत्र के धर्म-परिवर्तन का समाचार आजीवक संघ के नेता मंखलिपुत्र गोशालक के कानों तक पहुंचा। आजीवक मतानुयायी गृहस्थों में सद्दालपुत्र का विशेष स्थान था। उसके धर्म-परिवर्तन करने की मंखलिपुत्र के हृदय में कभी कल्पना भी नहीं हुई थी। जब उसने सद्दालपुत्र के आजीविक धर्म छोड़ने की बात सुनी तो मानो उस पर वज्रपात हो गया। क्रोध से उसका शरीर कांपने लगा, ओंठ फड़कने लगे और चेहरा लाल हो उठा। क्षणभर अवाक् हो ओंठों को चबाता हुआ अपने भिक्षु-संघ से बोला- ''भिक्षुओं! सुनते हो, पोलासपुर का धर्म-स्तंभ गिर गया। श्रमण महावीर के उपदेश से सद्दालपुत्र आजीवक संप्रदाय को छोड़कर निर्ग्रन्थ प्रवचन का भक्त हो गया है। कैसा आश्चर्य है। कितने खेद की बात है। भिक्षुओ चलिए, पोलासपुर की ओर शीघ्र चलें। सद्दाल को फिर से आजीवक धर्म में लाकर स्थिर करना अपना सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। अपने भिक्षु संघ के साथ मंखलि गोशालक ने पोलासपुर की ओर प्रयाण किया। उसे पूर्ण

विश्वास था कि पोलासपुर जाते ही सद्दालपुत्र फिर आजीवक संघ का सदस्य बन जाएगा। इसी आशा में उसने बड़ी जल्दी पोलासपुर का मार्ग तय किया।

पोलासपुर में आजीवक संघ की एक बड़ी सभा थी, गोशालक ने उसी सभा में डेरा डाला। कुछ भिक्षुओं के साथ गोशालक सद्दालपुत्र के स्थान पर गया। वह सद्दालपुत्र जो गोशालक का नाममात्र सुनकर पुलकित हो उठता था, आज उसे अपने मकान पर आए हुए देखकर भी उसने कोई आदर नहीं दिखाया। गोशालक को देखकर न वह उठा ही और न उसका गुरुभाव से सत्कार ही किया। मंखलि श्रमण को अपनी शक्ति की थाह मिल गयी। सद्दालपुत्र को पुनः आजीवक मतानुयायी बनाने की उसकी आशा विलीन सी हो गई। उसने सोचा-'उपदेश द्वारा या प्रतिकूलता दिखाने से सद्दालपुत्र का अनुकूल होना कठिन है।' शान्ति और कोमलता धारण करते हुए गोशालक बोला- ''देवानुप्रिय! महाब्राह्मण यहां आ गए?''

सद्दालपुत्र- ''महाब्राह्मण कौन?''

गोशालक- ''श्रमण भगवान महावीर।''

सद्दालपुत्र- ''भगवान महावीर महाब्राह्मण कैसे? श्रमण भगवान को किस कारण महाब्राह्मण कहते हो?''

गोशालक- ''भगवान महावीर ज्ञान-दर्शन के धारक हैं, जगत्पूजित हैं और सच्चे कर्मयोगी हैं। इसलिए वे 'महाब्राह्मण' हैं। क्या महागोप यहा आ गए?''

सद्दालपुत्र- ''महागोप कौन?''

गोशालक- ''इस संसाररूपी घोर अटवी में भटकते, टकराते और नष्ट होते संसारी प्राणियों का धर्मदण्ड से गोपन करते हैं और मोक्षरूप बाड़े में सकुशल पहुंचाते हैं। इसी कारण भगवान महावीर 'महागोप' हैं। क्या 'महाधर्मसारथी' यहां आ गए, सद्दालपुत्र?''

सद्दालपुत्र- ''महाधर्मसारथी कौन?''

गोशालक- ''श्रमण भगवान महावीर।''

सद्दालपुत्र- ''देवानुप्रिय! भगवान महावीर को महाधर्मसारथी किस कारण कहते हो?''

गोशालक- ''सद्दालपुत्र! इस असीम संसार में भटकते, टकराते, वास्तविक मार्ग को छोड़कर उन्मार्ग पर चलते हुए अज्ञानी जीवों को धर्मत्व का उपदेश देकर धर्ममार्ग पर चलाते हैं, इस वास्ते श्रमण भगवान महावीर 'महाधर्मसारथी' हैं। क्या महानिर्यामक यहां आ गए, सद्दालपुत्र?''

सद्दालपुत्र- ''महानिर्यामक कौन?''

गोशालक- ''श्रमण भगवान महावीर।''

सद्दालपुत्र- ''देवानुप्रिय! श्रमण भगवान महावीर को महानिर्यामक किसलिए कहते हो?''

गोशालक- ''इस संसाररूपी अथाह समुद्र में डूबते हुए जीवों को धर्मस्वरूप नाव में बिठलाकर अपने हाथ से उन्हें पार लगाते हैं, अतः श्रमण भगवान महावीर 'महानिर्यामक' हैं।''

सद्दालपुत्र- ''देवानुप्रिय! तुम ऐसे चतुर, ऐसे नयवादी, ऐसे उपदेशक और ऐसे विज्ञान के ज्ञाता हो तो क्या मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर के साथ विवाद कर सकते हो?''

गोशालक- ''नहीं, मैं ऐसा करने में समर्थ नहीं हूं।''

सद्दालपुत्र- ''क्यों? मेरे धर्माचार्य के साथ विवाद करने में तुम समर्थ क्यों नहीं?''

गोशालक- ''सद्दालपुत्र! जैसे कोई युवा मल्ल पुरुष भेड़ें, सुअर आदि पशु या कूकर, तीतर, बत्तख

आदि पक्षी को पांव, पूंछ, पंख जहां कहीं से पकड़ता है मजबूती से पकड़ता है, वैसे ही श्रमण भगवान महावीर भी हेतु, युक्ति, प्रश्न और उत्तर में जहां जहां मुझे पकड़ते हैं, वहां वहां निरूत्तर करके ही छोड़ते हैं। इसलिए मैं तुम्हारे धर्माचार्य के साथ विवाद करने में असमर्थ हूं।''

सद्दालपुत्र- ''देवानुप्रिय! आपने मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर की वास्तविक प्रशंसा की है। इसलिए मैं आपको पीठ फलक आदि का निमन्त्रण देता हूं। आप मेरी भाण्डशाला में जाकर ठहर सकते हो। गोशालक भाण्डशाला में ठहर गया। वहां सद्दालपुत्र ने उसे बहुत समझाया, पर वह नहीं माना। गोशालक के मन को गहरी चोट लगी, जो कभी शांत नहीं हुई।''

पोलासपुर में ही अतिमुक्त मुनि ने दीक्षा ग्रहण की जिसकी कथा इस प्रकार है-

अतिमुक्तकुमार

भगवान महावीर के शिष्य-परिवार में सबसे छोटे मुनि अतिमुक्तकुमार थे। इसका वर्णन अन्तकृद्दशांग व भगवतीसूत्र में स्वयं भगवान महावीर ने किया है। यह पोलासपुर के राजा विजय व रानी श्रीदेवी के पुत्र थे। उपासकदशांग में पोलासपुर का राजा जितशत्रु बताया गया है। जितशत्रु उस समय का कोई विशेषण रहा होगा। वहां श्रीवन उद्यान था। एक बार भगवान महावीर अपनी धर्मदेशना देते हुए पोलासपुर पधारे।

उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम भिक्षा के लिए शहर में घूम रहे थे। कुछ ही दूर कुछ बच्चे उद्यान में सोने की गेंद से खेल रहे थे। उस खेल स्थान का नाम इन्द्रस्थान था। ज्यों ही गणधर गौतम इस स्थान से गुजरे। अतिमुक्त ने उनको देखा। शान्त, दान्त और मन्द मुस्कान से भरा मुख, विशाल भाल, उन्नत मस्तक, चमकते नेत्र, अभय की मंजुलमूर्ति विशिष्ट श्वेत वेश भूषा ने अतिमुक्त को आकर्षित किया। वह कुछ देर टकटकी लगातार उनकी ओर देखता रहा। फिर उनके करीव आकर पूछने लगा- ''भदन्त! आप कौन हैं और किस कारण घर-घर में घूम रहे हैं?''

गणधर गौतम ने उस अद्भुत बालक को देखा। उसका चेहरा सहजता, सरलता का सुन्दर प्रतीक था। गौतम स्वामी ने साधु भाषा में उस बालक की जिज्ञासा शांत करते हुए कहा- ''देवानुप्रिय! हम श्रमण निर्ग्रन्थ मुनि हैं। भिक्षा के लिए हम उच्च, नीच, मध्यम कुलों में घूमते हैं।''

अतिमुक्त ने पूछा- ''क्या आप मेरे घर भिक्षा के लिए पधारेंगे?''

गौतम स्वामी ने उत्तर दिया- ''हां, क्यों नहीं।''

अतिमुक्त ने पुनः कहा- ''फिर आप मेरे साथ अभी चलिए। मैं आपको अपने घर से भिक्षा दिलवाता हूं।''

यह कहकर अतिमुक्त ने चार ज्ञान के धारक, लब्धिधारी गौतम की अंगुली पकड़ ली। वह गणधर गौतम को अपने महलों में अंगुली पकड़कर ले गया। महल आ गया। माता श्रीदेवी गणधर गौतम के आगमन से प्रसन्न हुई। उसने विधि सहित वन्दन किया, फिर भोजन दिया। अतिमुक्तक गणधर गौतम की अंगुली पकड़कर बाहर आया। वह उनसे पूछने लगा- ''महाराज! आप कहां रहते हैं?''

गौतम ने बड़े ही स्नेह और सरलता से उत्तर दिया- ''हम अपने धर्माचार्य भगवान महावीर के पास रहते हैं, जो इस समय नगर के बाहर श्रीवन में विराजमान हैं, हम उनके शिष्य हैं।''

अतिमुक्त छह वर्ष का बालक था। वह गणधर गौतम से काफी प्रभावित हो चुका था। ऐसा लगता था कि उनका पूर्व परिचित हो।

गौतम स्वामी प्रभु महावीर के साथ लौटे। साथ में उंगली पकड़े अतिमुक्त कुमार भी था। प्रभु महावीर को जैसे गौतम ने वन्दन किया उसका अनुसरण अतिमुक्तक ने भी किया। अतिमुक्तक ने प्रभु महावीर का वैराग्यमय उपदेश सुना।

उपदेश सुनने के बाद अतिमुक्त ने कहा- ''भंते! मैं भी आपके समान श्रमण बनना चाहता हूं।''

प्रभु महावीर ने कहा- ''भंते! जैसे आपकी आत्मा को सुख हो वैसा करो पर शुभ कार्य में प्रमाद मत करो।''

वह अपने महलों में वापिस आया। उसने माता-पिता से साधु बनने की आज्ञा मांगी, तो माता-पिता ने कहा- ''बेटा! अभी तू अल्पायु है फिर साधु जीवन कोई बच्चों का खेल नहीं है। यह तो नंगी तलवार पर चलना है। तू जिस वातावरण में पला है उसे त्यागना तेरे लिए कठिन है फिंर तू धर्म के विषय में क्या जानता है?''

अतिमुक्त ने कहा-''हे माता-पिता! मैं कुछ जानता भी हूं, कुछ नहीं भी जानता।''

माता पिता ने कहा- ''बेटा! तू क्या जानता है, क्या नहीं जानता हमें भी बता?''

अतिमुक्त ने जो उत्तर दिया, वह धर्म के इतिहास में अभूतपूर्व था। फिर मात्र छह वर्ष का बालक धर्मचर्चा कर रहा था। यह अवस्था बाल्यावस्था कहलाती है, पर जिसकी आत्मा जागृत हो जाए, जिस पर वैराग्य का रंग चढ़ गया हो उसे संसार अपने रंग में रंग नहीं सकता। अतिमुक्त की आत्मा सरल और विशुद्ध थी। इसी आत्मा के स्वामी अतिमुक्त ने कहा- ''हे माता-पिता! मैं यह जानता हूं कि जो जन्मा है वह एक दिन मरेगा जरूर, पर मरकर कहां जाएगा, यह मैं नहीं जानता।''

इतना सूक्ष्म तत्व ज्ञान कम ही किसी के जीवन में वैराग्य से पहले मिलता है। माता-पिता समझा बुझाकर थक गए। फिर उन्होंने कहा-''बेटा! तुम प्रसन्नता से सन्त बन जाना। हम कोई रुकावट नहीं बनेंगे। पर हम तुम्हें राजा के रूप में देखना चाहते हैं। तुझे एक दिन इस सिंहासन पर बैठना पड़ेगा।''

अतिमुक्त ने माता-पिता की बात को सहर्ष स्वीकार किया। राज्यभिषेक की तैयारी की गई। एक दिन का राजा अतिमुक्त बना। अगले दिन वह प्रभु महावीर के चरणों में साधु बन गया।

जैन परम्परा में ८ वर्ष से कम दीक्षा देने का विधान नहीं है पर प्रभु महावीर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे। उन्हें इस जीव के शीघ्र मोक्ष जाने का ज्ञान था। सो उन्होंने अतिमुक्त को साधु बनाया।

भगवतीसूत्र में अतिमुक्त मुनि के श्रमण-जीवन की एक घटना का वर्णन प्राप्त होता है।

एक बार आकाश घने बादलों से भरा पड़ा था। स्थविरों-मुनियों के साथ अतिमुक्त श्रमण भी विहार भूमि को निकले। स्थविर इधर-उधर बिखर गए। उसी समय वर्षा शुरू हो गई। वर्षा इतनी तेज थी कि पानी ऊपर से नीचे की ओर बह रहा था। अतिमुक्त चाहे मुनि था, पर अभी उसका बचपन नहीं गया था। उसे वर्षा में खेलने की सूझी। उसने मिट्टी के पाल को बांधकर जल के प्रवाह को रोका और लकड़ी का पात्र उसमें छोड़ दिया। आनन्द विभोर होकर वह कहने लगे- ''देखो, मेरी नैया पार हो रही है।'' पात्र की नैया बह रही थी।

साथी स्थविरों (मुनियों) ने देखा कि बाल मुनि साधु मर्यादा के विपरीत कार्य कर रहा है। उन्हें काफी रोष आया। स्थविरों का रोष मुख पर आ गया। अतिमुक्त एकदम संभल गया। अब अपनी भूल का पश्चात्ताप करने लगा। उसे अपनी मर्यादा का भान हो चुका था। उसने पश्चाताप से अपनी आत्मा को पावन बना लिया था।

भगवान महावीर की सेवा में पहुंचकर स्थविरों ने सविनय प्रश्न किया- ''भगवन्! आपका यह लघु शिष्य अतिमुक्त कितने भवों में मुक्त होगा?''

भगवान महावीर ने उत्तर दिया- ''मेरा यह शिष्य इसी भव में शीघ्र ही मोक्ष जाने वाला है। स्थविरो! तुम इसकी हीलना निन्दना और गर्हणा मत करो। जहां तक हो सके इसकी सेवा करो, भक्ति करो। यह निर्मल आत्मा है। इस पर क्रोध व रोष मत करो।''

स्थविरों ने प्रभु महावीर के कथन को सहर्ष स्वीकार किया। वह परस्पर कहने लगे- यह देह से लघु है, पर आत्मा की दृष्टि से महान है। यह सागर से भी अधिक गंभीर है और हिमगिरि से भी अधिक उन्नत है। जिसकी आत्मा विशुद्ध है वही पूज्य है, आदरणीय है, साधना के क्षेत्र में देह की पूजा नहीं, किन्तु गुणों की पूजा होने लगती है।'' स्थविर अतिमुक्त मुनि की सेवा करने लगे।[८६]

अतिमुक्त मुनि ने एकाग्र और एकनिष्ठ होकर स्थविरो से ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। संयम और तप के कारण उनका कोमल शरीर कुम्हलाने लगा। उनकी गुलाबी आभा तेज में परिणत हो गई। गुणसंवत्सर तप की सुदीर्घ आराधना से देह बल क्षीण होने लगा, किन्तु मनोबल के साथ वह लघु साधक तपोमार्ग पर निरन्तर बढ़ता गया।

जीवन के अन्त में विपुलगिरि पर संलेखना से उसने अजर, अमर पद प्राप्त किया।[८७]

पोलासपुर से विहार कर प्रभु महावीर अपने समस्त शिष्य परिवार सहित अनेक नगरों ग्रामों में धर्म प्रचार करने लगे।

बाईसवां वर्ष

अब वर्षावास आ चुका था। वह वर्षावास का समय बिताने वाणिज्यग्राम पधारे। इस वर्ष अनेक जीवों ने प्रभु के उपदेश से प्रभावित होकर महाव्रत व श्रावक व्रत अंगीकार किए।

चातुर्मास समाप्त होते ही प्रभु महावीर ने वाणिज्यग्राम से मगध देश की ओर विहार किया। वह इसकी राजधानी राजगृही के गुणशील चैत्य में पधारे। प्रभु महावीर के आगमन की सूचना राजा श्रेणिक व रानी चेलना को लगी। दोनों प्रभु महावीर को वन्दन करने आए।

प्रभु महावीर पोलासपुर से विहार कर राजगृह में धर्म-प्रचार कर रहे थे। यहीं उनका शिष्य महाशतक गाथापति रहता था। उसके पास १४ करोड़ स्वर्ण मुद्राएं थीं। रेवती आदि १३ पत्नियां थीं। रेवती अपने पितृ गृह से ८ करोड़ का हिरण्य लाई थी ओर एक व्रज भी लाई थी। शेष पत्नियां भी एक-एक करोड़ का हिरण्य लाई थीं और एक-एक व्रज।

भगवान महावीर के आगमन का समाचार महाशतक को मिल चुका था। वह भी अन्य लोगों की तरह प्रभु महावीर की धर्मदेशना सुनने गया। राजा श्रेणिक व राज्य-परिवार के सदस्य, गरीब, अछूत, साहूकार, प्रभु महावीर की वाणी का आनंद ले रहे थे। उपदेश समाप्त होने के पश्चात् महाशतक ने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किए।

महाशतक की रेवती नामक पत्नी दुष्ट स्वभाव की थी। वह बड़ी क्रूर, लालची और कामासक्त थी। वह शराब, मांस का हर रोज सेवन करती थी। धर्म-कर्म के नाम से उसे चिढ़ थी। उसने उसी लालचवश अपनी छह सौतों को शस्त्र प्रयोग से और छह को विष प्रयोग से मरवा दिया। उनकी सारी सम्पत्ति की वह स्वयं स्वामिनी बन गई।

एक बार प्रभु महावीर राजगृह में पधारे। राजा श्रेणिक ने अमारि की घोषणा की। इस कानून के अनुसार किसी भी व्यक्ति को मांस दुकानों से मिलना बंद हो गया। रेवती मांस की शौकीन रसलोलुपी थी। उसने अपने एक नौकर को अपने पितृ गृह भेजा। वहां से वह हर रोज दो बछड़ों का मांस मंगवाने लगी, जिसे पकाकर वह शराब के साथ सेवन करती। रेवती की किसी बात का भी महाशतक को पता नहीं था क्योंकि उसका अधिकांश समय धर्म-आराधना हेतु बनी पौषधशाला में बीतता। पर जब उसे रेवती की इस करतूत का पता चला कि वह पीहर से दो बछड़ों का मांस मंगाकर सेवन करती है तो महाशतक को रेवती से घृणा हो गई। वह उससे विरक्त होकर आत्म साधना में लीन रहने लगा।

महाशतक को साधना करते हुए १४ वर्ष व्यतीत हो चुके थे, तब उसने बड़े पुत्र को घर का भार संभाल कर लिए स्वयं पौषधशाला में भगवान महावीर की धर्म प्रज्ञप्ति के अनुसार साधना करने लगा।

एक दिन की बात है-रेवती गाथा पत्नी मांस और शराब के नशे में धुत्त हुई अत्यन्त कामातुर एवं निर्लज्ज होकर महाशतक के पास आई। उसे वह अपने कामपाश में बांधने के लिए प्रयत्न करने लगी, पर महाशतक पूर्ण विरक्त रहा। रेवती कामुक प्रवृत्ति दिखाते हुए कामभोग की याचना करने लगी और रेवती ने कहा- मुझे ज्ञात है कि तुम्हारे सिर पर धर्म का नशा चढ़ा हुआ है, तुम मुक्ति के लालच में फंसकर यह विरक्ति का ढोंग रच रहे हो। पर तुम नहीं जानते, यदि मेरी इच्छा को तृप्त कर मेरे साथ कामभोग सेवन करते हो, तो वह मुक्ति के सुख से भी अधिक आनंद प्रदान करेंगे। आओ! मेरी इच्छा पूरी कर मुझे तृप्त करो।''

महाशतक का बोध ज्ञान

रेवती बेहयायी की सभी हदें पार कर चुकी थी। उसने अपने इसी वाक्य को तीन बार दोहराया। महाशतक को साधना से गिराने के लिए कामोद्दीपक हाव, भाव और कटाक्ष किया, पर महाशतक अडिग रहा। घोर तप की साधना से उसका शरीर कृश हो गया, अतः उसने मारणान्तिक संलेखना द्वारा अशन, पान का त्याग कर दिया। शुभ अध्यवसाय से उसे अवधिज्ञान हुआ। इसके प्रभाव से वह पूर्व, पश्चिम, दक्षिण दिशा तक एक हजार योजन तक और उत्तर दिशा में चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत तक की हर घटना को जानने और देखने लगा। अधोलोक में वह रत्नप्रभा पृथ्वी के चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाला लोलुप अच्युत नाम के नरकावास तक जानने देखने लगा।

रेवती का पुनः आगमन

महाशतक अब अवधिज्ञानी था। उसकी पत्नी को शराब-मांस की आदत पड़ चुकी थी। एक दिन रेवनी पुनः मदिरा के नशे में उसके निकट आई। उस समय वह अनशन में धर्म जागरण कर रहा था। रेवती विह्वलतापूर्वक काम-प्रार्थना करने लगी। महाशतक मौन रहा। रेवती ने यह काम हरकत दो बार की। तीसरी बार रेवती महाशतक को कामवश धिक्कराने लगी। उसके व्रतों व आचार पर तिरस्कारपूर्वक आक्षेप करने लगी। और अंत में जब अत्यंत काम-विह्वल हो गर्हित आचरण करने पर उतारू हो गई, तो महाशतक को क्रोध आ गया। उसने रेवती को अभद्र व्यवहार के लिए फटकार लगाई, फिर अपने अवधिज्ञान से रेवती का अंधकारमय भविष्य देखते हुए कहा- ''रेवती, तुम सात दिनों में अलसक (विषुचिका) रोग से पीड़ित होकर रत्नप्रभा पृथ्वी में अच्युत नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाली नरक योनि में पैदा होगी। वहां अत्यंत उग्र कष्ट पाओगे।''